कविता/ हिन्दू राष्ट्र

हिन्दू राष्ट्र की स्थापना हो चुकी थी; हिन्दू राष्ट्र के रोड़े हटाए जा चुके थे; मुसलमान, ईसाई और कम्युनिस्ट खदेड़ दिए गये थे; भारत माता की जय और वंदे मातरम् विशुद्ध हिन्दू नारे बनाये जा चुके थे। अब शासक भी हिन्दू थे और उनके दलाल और करिंदे भी; अयोध्या भी हिन्दू और आतंक भी; पुलिस का दरोगा भी और जज-मजिस्ट्रेट भी। जिनको वे लूटते-पीटते रहते थे वह जनता भी हिन्दू और सिर्फ़ और सिर्फ हिन्दू बची थी।

नोटबंदी की कतार और जीएसटी की मार में बस हिन्दू ही हिन्दू! चैन-वैन से साँस लेने का चलन नहीं, गर्व से हिन्दू साँस खींचने का जमाना! दलित मुकम्मल पद-दलित हिन्दू और आदिवासी संसाधन रहित हिन्दू! क़र्ज़ में डूबता हिन्दू किसान, आत्मघात से दे देता अपनी हिन्दू जान! हिन्दू सेठ मुनाफ़े से लबरेज़ मुस्कुराता, हिन्दू श्रमिक के शोषण पर इतराता, हिन्दू बैंक से हिन्दू पैसा लेकर फरार हो जाता! हिन्दू ही किया करता हिंदू से व्यभिचार, हिंदू ही शिकारी और हिंदू ही शिकार!

हिन्दू हाथों में गौरक्षा विधान लिये, हिन्दू धरती पर बस हिंदू महान जिये। चाँद-सितारे और सूरज भी हिन्दू, हवा-पानी और कण-रज भी हिन्दू। हिन्दू दंगा हो और हो हिन्दू इंसाफ़, हिन्दू गंगा धुले सिर्फ़ हिन्दू का पाप! मूर्तियाँ बनाने वाले सभी हिन्दू हों, मूर्तियाँ बनने वाले भी हों हिन्दू ही। शर्तिया बनाने वाले सभी हिन्दू हों, शर्तिया बनने वाले भी हों हिन्दू ही।

सभ्यता और आदिवासी

थोड़ी देर पहले नेशनल जियोग्राफी चैनल एक प्रोग्राम दिखा रहा था, जिसमें अमेरिका के कुछ लोग कुछ आदिवासियों को जंगल से लाकर वहां शहर की चकाचौंध और रंगीनियाँ दिखा कर उनको प्रभावित करने की कोशिश करते दिख रहे हैं।

इन लोगों के साथ घूमते हुए एक आदिवासी बड़ी-बड़ी बिल्डिंग्स देखता है। "वाह इतने सारे घर..." बोलते हुए वो बड़ा खुश होता है।

फिर वो देखता है कि सड़क किनारे भी लोग हैं जो भीख मांगते हैं और रेन-बसेरे में रात बिताते हैं।

वो उन कार्यक्रम बनाने वालों से पूछता है कि, "ये सब लोग बाहर क्यूँ पड़े हैं.. जबकि आपके पास इतने सारे घर हैं शहर में?"

आयोजक जवाब देता है-"जो घर आप देख रहे हैं वो इन सबके नहीं हैं। वो दूसरे लोगों के हैं।"

आदिवासी पूछता है, "मगर वो सारे घर तो खाली थे.. उनमे कोई क्यूं नहीं रहता?"

आयोजक बोलता है "वो अमीर लोगों के घर हैं। यहाँ लोगों के पास कई-कई घर होते हैं। लोग पैसा इन्वेस्ट करने के लिए घर खरीद लेते हैं।

आदिवासी कहता है, "ये किस तरह की सभ्यता है तुम्हारी?

किसी के घर खाली पड़े हैं और लोग सड़कों पर रह रहे हैं...जबकि पूरी उम्र आपको रहने के लिए सिर्फ एक घर ही चाहिए...

आप अपने अतिरिक्त घर अपनी और नस्लों को क्यूँ नहीं दे देते हैं?

ऐसे घरों का क्या करेंगे आप?"

फिर वो आगे बोलता है-"हमारे जंगल में जब कोई नवयुवक शादी करता है तो हम सारे गाँव वाले मिलके उसके लिए घर बनाते हैं...

अपने हाथ से उसका छप्पर बनाते हैं और मिलकर बांधते हैं।

ऐसे हम एक-दूसरे के लिए अपने हाथों से घर बनाते हैं और अपने बच्चों को बसाते हैं।"

इतनी बात सुनकर कार्यक्रम वाले शर्मिंदा हो जाते हैं, और उन्हें समझ आता है कि जिस सभ्यता की डींग मारने के लिए वो इन आदिवासियों को लाए हैं, वह असल में सभ्यता है ही नहीं। इन्होने हमारे सभ्य होने का भ्रम चकनाचूर कर दिया एक सीधे और भोले सवाल से...और समझा दिया कि दरअसल हम लोगों की सभ्यता, सभ्यता है ही नहीं। अपनी ही आने वाली नस्लों का शोषण है बस।

-सिद्धार्थ ताबिश

मेरे राम से ... हे! राम तक

राजकिशोर प्रसाद सिंह

कहते हैं अयोध्या में राम जन्मे, वहीं खेले कूदे बड़े हुए, बनवास भेजे गए, लौट कर आए तो वहां राज भी किया, उनकी जिंदगी के हर पल को याद करने के लिए एक मंदिर बनाया गया, जहां खेले, वहां गुलेला मंदिर है, जहां पढ़ाई की वहां वशिष्ठ मंदिर हैं. जहां बैठकर राज किया वहां मंदिर है. जहां खाना खाया वहां सीता रसोई है. जहां भरत रहे वहां मंदिर है. हनुमान मंदिर है. कोप भवन है. सुमित्रा मंदिर है. दशरथ भवन है. ऐसे बीसीयों मंदिर हैं. और इन सबकी उम्र 400-500 साल है. यानी ये मंदिर तब बने जब हिंदुस्तान पर मुगल या मुसलमानों का राज रहा.

अजीब है न! कैसे बनने दिए होंगे मुसलमानों ने ये मंदिर! उन्हें तो मंदिर तोड़ने के लिए याद किया जाता है. उनके रहते एक पूरा शहर मंदिरों में तब्दील होता रहा और उन्होंने कुछ नहीं किया! कैसे अताताई थे वे, जो मंदिरों के लिए जमीन दे रहे थे. शायद वे लोग झूठे होंगे जो बताते हैं कि जहां गुलेला मंदिर बनना था उसके लिए जमीन मुसलमान शासकों ने ही दी. दिगंबर अखाड़े में रखा वह दस्तावेज भी गलत ही होगा जिसमें लिखा है कि मुसलमान राजाओं ने मंदिरों के बनाने के लिए 500 बीघा जमीन दी. निर्मोही अखाड़े के लिए नवाब सिराजुदौला के जमीन देने की बात भी सच नहीं ही होगी, सच तो बस बाबर है और उसकी बनवाई बाबरी मस्जिद! अब तो तुलसी भी गलत लगने लगे हैं जो 1528 के आसपास ही जन्मे थे. लोग कहते हैं कि

1528 में ही बाबर ने राम मंदिर तोड़कर बाबरी मस्जिद बनवाई. तुलसी ने तो देखा या सुना होगा उस बात को. बाबर राम के जन्म स्थल को तोड़ रहा था और तुलसी लिख रहे थे मांग के खाइबो मसीत में सोइबो. और फिर उन्होंने रामायण लिखा डाली. राम मंदिर के टूटने का और बाबरी मस्जिद बनने क्या तुलसी को जरा भी अफसोस न रहा होगा! कहीं लिखा क्यों नहीं!

अयोध्या में सच और झूठ अपने मायने खो चुके हैं. मुसलमान पांच पीढ़ी से वहां फूलों की खेती कर रहे हैं. उनके फूल सब मंदिरों पर उनमें बसे देवताओं पर.. राम पर चढ़ते रहे. मुसलमान वहां खड़ाऊं बनाने के पेशे में जाने कब से हैं. ऋषि मुनि, संन्यासी, राम भक्त सब मुसलमानों की बनाई खड़ाऊं पहनते रहे. सुंदर भवन मंदिर का सारा प्रबंध चार दशक तक एक मुसलमान के हाथों में रहा. 1949 में इसकी कमान संभालने वाले मुन्नू मियां 23 दिसंबर 1992 तक इसके मैनेजर रहे. जब कभी लोग कम होते और आरती के वक्त मुन्नू मियां खुद खड़ताल बजाने खड़े हो जाते तब क्या वह सोचते होंगे कि अयोध्या का सच क्या है और झूठ क्या?

अग्रवालों के बनवाए एक मंदिर की हर ईंट पर 786 लिखा है. उसके लिए सारी ईंटें राजा हुसैन अली खां ने दीं. किसे सच मानें? क्या मंदिर बनवाने वाले वे अग्रवाल सनकी थे या दीवाना था वह हुसैन अली खां जो मंदिर के लिए ईंटें दे रहा था? इस मंदिर में दुआ के लिए उठने वाले हाथ हिंदू या मुसलमान किसके हों, पहचाना ही नहीं जाता. सब आते हैं. एक नंबर 786 ने इस मंदिर को सबका बना दिया. क्या बस छह दिसंबर 1992 ही सच है! जाने कौन.

छह दिसंबर 1992 के बाद सरकार ने अयोध्या के ज्यादातर मंदिरों को अधिग्रहण में ले लिया. वहां ताले पड़ गए. आरती बंद हो गई. लोगों का आना जाना बंद हो गया. बंद दरवाजों के पीछे बैठे देवी देवता क्या कोसते होंगे कभी उन्हें जो एक गुंबद पर चढ़कर राम को छू लेने की कोशिश कर रहे थे? सूने पड़े हनुमान मंदिर या सीता रसोई में उस खून की गंध नहीं आती होगी जो राम के नाम पर अयोध्या और भारत में बहाया गया?

अयोध्या एक शहर के मसले में बदल जाने की कहानी है. अयोध्या एक तहज़ीब के मर जाने की कहानी है.

ग़रीबों में संतोष का नुस्ख़ा - लू शुन

एक शिक्षक अपने बच्चों को नहीं पढ़ाता, उसके बच्चों को दूसरे ही पढ़ाते हैं। एक डॉक्टर अपना इलाज खुद नहीं करता, उसका इलाज कोई दूसरा डॉक्टर करता है। लेकिन अपना जीवन जीने का तरीक़ा हर आदमी को खुद खोजना पड़ता है। क्योंकि जीने की कला के जो भी नुस्ख़े दूसरे लोग बनाते हैं, वे बार-बार बेकार साबित होते हैं।

दुनिया में प्राचीन काल से ही शांति और चैन बनाए रखने के लिए ग़रीबी में संतोष पाने का उपदेश बड़े पैमाने पर दिया जाता है। ग़रीबों को बार-बार बताया जाता है कि संतोष ही धन है। ग़रीबों में संतोष पाने के अनेक नुस्ख़े तैयार किए गए हैं, लेकिन उनमें में कोई पूरी तरह सफल साबित नहीं हुआ है। अब भी रोज़-रोज़ नए-नए नुस्ख़े बनाए जा रहे हैं। मैंने अभी हाल में ऐसे दो नुस्ख़ों को देखा है। वैसे ये दोनों भी बेकार ही हैं।

इनमें में एक नुस्ख़ा यह है कि लोगों को अपने कामों में दिलचस्पी लेनी चाहिए। 'अगर आप अपने काम में दिलचस्पी लेना शुरू कर दें तो काम चाहे कितना ही मुश्किल क्यों ना हो, आप खुशी से काम करेंगे और कभी नहीं थकेंगे।' अगर काम बहुत मुश्किल ना हो तो यह बात सच हो सकती है। चलिए, हम खदान मज़दूरों और मेहतरों की बात नहीं करते। आइए हम शंघाई के कारख़ानों में दिन में दस घंटे से अधिक काम करने वाले मज़दूरों के बारे में बात करें। वे मज़दूर शाम तक थक कर चूर-चूर हो जाते हैं। उन्हें उपदेश दिया जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन होता है। अगर आपको अपने शरीर की देखभाल की फ़ुर्सत नहीं मिलती तो आप काम में दिलचस्पी कहाँ से पैदा करेंगे। इस हालत में वही आदमी काम में दिलचस्पी ले सकता है जो जीवन में अधिक दिलचस्पी रखता हो। अगर आप शंघाई के मज़दूरों से बात करें तो वे काम के घटे कम करने की ही बात करेंगे। वे काम में दिलचस्पी पैदा करने की बात कल्पना में भी नहीं सोच सकते।

इससे भी अधिक पक्का नुस्ख़ा दूसरा है। कुछ लोग अमीरों और ग़रीबों की तुलना करते हुए कहते हैं कि आग बरसाने वाले गर्मी के दिनों में अमीर लोग अपनी पीठ से बहते पसीने की धार की चिन्ता ना करते हुए सामाजिक सेवा में लगे रहते हैं। ग़रीबों का क्या है? वे एक टूटी चटाई गली में बिछा देते हैं, फिर अपने कपड़े उतारते हैं और चटाई पर बैठकर आराम से ठडी हवा खाते हैं।

यह कितना सुखद है। इसी को कहते हैं चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतना। यह सब दुर्लभ और राज्यात्मक नुस्ख़ा है, लेकिन इसके बाद एक दुखद दृश्य सामने आता है। अगर आप शरद ऋतु में गलियों से गुज़र रहे हों, तो देखेंगे कि कुछ लोग अपने पेट कसकर पकड़े हुए हैं और कुछ नीला तरल पदार्थ कै कर रहे हैं। ये कै करने वाले वे ही ग़रीब लोग हैं, जिनके बारे कहा जाता है कि वे धरती पर स्वर्ग का सुख लूटते हैं और चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतते हैं। मेरा ख़याल है कि शायद ही कोई ऐसा बेवक़ूफ़ होगा जो सुख का मौक़ा देखकर भी उससे लाभ ना उठाता हो। अगर ग़रीबी इतनी सुखद होती तो ये अमीर लोग सबसे पहले गली में जाकर सो जाते और ग़रीबों की चटाई के लिए कोई जगह ना छोड़ते।

अभी हाल में ही शंघाई के हाई स्कूल की परीक्षाओं के छात्रों के निबंध छपे हैं। उनमें एक निबंध का शीर्षक है - 'ठंडक से बचाने लायक कपड़े और भरपेट भोजन'। इस लेख में कहा गया है कि "एक ग़रीब व्यक्ति भी कम खाकर और कम पहनकर अगर मानवीय गुणों का विकास करता है, तो भविष्य में उसे यश मिलेगा। जिसका आध्यात्मिक जीवन समृद्ध है, उसे अपने भौतिक जीवन की ग़रीबी की चिता नहीं करनी चाहिए। मानव जीवन की सार्थकता पहले में है, दूसरे में नहीं।"

इस लेख में केवल भोजन की ज़रूरत को नहीं नकारा गया है, कुछ आगे की बातें भी कही गई हैं। लेकिन हाई स्कूल के छात्र के इस सुंदर नुस्ख़े से विश्वविद्यालय के वे छात्र संतुष्ट नहीं हैं, जो नौकरी खोज रहे हैं।

तथ्य नितात निर्मम होते हैं। वे खोखली बातों के परखचे उड़ा देते हैं। मेरे विचार से अब वह समय आ गया है कि ऐसी पडिताऊ बकवास को बंद कर दिया जाए। अब किसी भी हालत में इसका कोई उपयोग नहीं है।

(13 अगस्त 1934, अनुवाद - चंद्र सदायत)